International Journal on Future Revolution in Computer Science & Communication Engineering
Volume: 3 Issue: 7
ISSN: 2454-4248
87 – 89

आध्यात्मिकता और मानवीय मूल्य

[1]डॉ. प्रवीन शर्मा
प्राचार्य
शहीद भगत सिंह कॉलेज ऑफ एजुकेशन
औढां रोड़ कालांवाली, सिरसा

[2]दीपक मैथिल
सहायक प्रोफेसर (कॉमर्स विभाग)
गुरू नानक खालसा कॉलेज
अबोहर, पंजाब

श्रीमद्भगवद्गीता के परिचय की कोई आवश्यकता नहीं है। भारतीय दर्शन और धर्म का यदि कोई ग्रंथ भारतीय लोकसभा को सर्वाधिक स्वीकृत है तो वह यही है, कोई अन्य नहीं। सब प्रकार के भेद–भावों और विरोधों को मिटाने वाला भारतीय तत्व ज्ञान का यह विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ रत्न लोक मानस में रचा–पसा है। इस ग्रन्थ का महत्त्व इससे भी स्पष्ट होता है कि भारतीय पुनर्जागरण और स्वतन्त्रता संग्राम के कर्णधारों ने इससे प्रेरणा प्राप्त की है। सार्वभौमिक रूप से जिस दार्शनिक या तपस्वी को इस रत्न की खबर लगी उसी ने इसे अनेकानेकबार स्वाध्याय कर आत्मसात किया और करूणावश अन्यों को उपदेश द्वारा इस 'गीत' का सन्देश दिया।

यह ग्रन्थ क्या है ? यह एक प्रकरण है अर्थात् एक विशेष समस्या का समाधान करने वाला ग्रन्थ है। अथवा, एक दार्शनिक ग्रन्थ–एक अध्यात्मविद्या का ग्रन्थ है ? गीता के प्रथम अध्याय 'विषाद योग' पर दृष्टिपात करने से यह प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ प्रथम कोटि का है जो अर्जुन के समक्ष उत्पन्न तात्कालिक समस्या का समाधान कर उसे स्वधर्म–युद्ध में प्रवृत करता है। परन्तु युद्ध करना अपवादहीन धर्म नहीं हो सकता तथा तब ग्रन्थ का इतना उपबृंहण क्यों हुआ ? इस शंका का समाधान इस प्रकार से है।

जिस प्रकार मन और शरीर का वैद्य मानिसक और शारीरिक रोगों का उपचार करता है उसी प्रकार आत्मज्ञानी वैद्य भवरोग का उपचार करता है। लौकिक वैद्य की सामर्थ्य सदैव सीमित ही होती है क्योंकि जब तक प्राणी भवरोग से ग्रस्त है तब तक उसके प्रतिफल में शारीरिक अथवा मानसिक एक रोग शान्त होकर तत्काल अन्य रोग उत्पन्न हो जाया करता है। अतएव पारलौकिक वैद्य के उपदेश से अथवा स्वयंबुद्ध के समान स्वात्म पुरूषार्थपूर्वक स्वात्मानुसंधान कर जो आत्मज्ञानी होकर भवरोग से मुक्त हुए हैं उन्हीं के दुःखों और रोगो की आत्यंतिक निवृति हुई है, अन्यथा कोई उपाय नहीं है। भवरोग को शान्त करने वाली इस पारलौकिक वैद्यिकी को ही ग्रीक परम्परा और भारतीय परम्परा में दर्शनशास्त्र कहा गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता अर्जुन के 'विषाद योग' को सन्दर्भ बनाकर जीवन की समस्याओं का चरम समाधान प्रदान करने के कारण एक अध्यात्म विद्या का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण ने शोक और मोहग्रस्त किंकर्तव्य विमूढ़ अर्जुन के उद्धार के लिए ज्ञान–कर्म–भक्ति की त्रिवेणी प्रवाहित की है। इस प्रकार तत्त्वज्ञान के अभाव के कारण जीव शोक और मोह, आशा और स्नेह तथा राग–द्वेष से ग्रस्त होता है, तथा जिसे सम्यदर्शन

ISSN: 2454-4248
87 – 89

की प्राप्ति हो जाती है वह भयों से मुक्त होता है उसकी मोहग्रन्थि टूट जाती है वह ज्ञान तथा वैराग्य से सम्पन्न होकर निष्कामभाव से कर्म करता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि जिन अज्ञानमय विकारी भावों से अर्जुन युक्त था उन्हीं भावों से महाभारत के अन्य योद्धा भी ग्रस्त थे। अन्तर मात्र इतना था कि इन दोषों ने अर्जुन के चित्त में एक द्वन्द्व, संधर्ष या संकट खड़ा कर दिया था जबकि अन्य योद्धाओं के चित्त में ऐसा संकट नहीं था। उन योद्धाओं के समान ही सभी संसारी जीव अज्ञानमय भावों को निजस्वभाव समझकर ही भवभ्रमण किया करते हैं। उस जिज्ञासु पुरूष के लिए, जिसने अर्जुन के समान ही संसार–शरीर–भोगों के प्रति संशय किया है, गीता कहती है कि जीव अपनी योग्यता के अनुसार ज्ञानयोग, कर्मयोग अथवा भक्ति योग में से किसी एक पर आरूढ़ होकर अज्ञान, दोषों एवं विकारों से मुक्त होकर सच्चिदानन्दमय आत्मस्वभाव को प्राप्त हो सकता है। गीता का तात्पर्यर्थ यह है ज्ञान कर्मभक्ति या विकल्प परस्पर पृथक नहीं है। क्योंकि ज्ञानी, कर्मयोगी और सच्चा भक्त तीनों अकर्त्ता होने से अन्ततः अभिन्न ही है।

गीता को धर्म का सर्वोत्तम ग्रन्थ मानने का यही कारण है कि इसमें ज्ञान, भक्ति व कर्म इन तीनों की न्याय युक्त व्याख्या है। तथा इन तीनों समन्वय कर निष्काम कर्म करने को उपदेश दिया गया है। ऐसा समन्वय अन्य किसी भी ग्रन्थ में नहीं है। इसी कारण गीता के सन्देश का क्षेत्र किसी एक विचार अथवा सिद्धान्त का प्रतिपादन करना मात्र है। ऐसा बिलकुल नहीं है इसके विपरीत गीता के सन्देश का क्षेत्र सार्वभौम है।

गीता में भगवान 'कृष्ण' को निमित्त बनाते हुए मानव के अभ्युदय ओर निश्रेयस् अर्थात् सर्वांगीण समृद्धि व आत्म पूर्णता को प्राप्त करने का उपाय बता दिया है। गीता का उपदेश विश्वभर के मानवों के लिये है। क्योंकि अर्जुन नर तत्व का प्रतीक है और 'कृष्ण' नारायण तत्व के, नर को नारायण बनने के लिये आत्मसाक्षत्कार करने के लिये, मोक्ष प्राप्ति के लिये, गीता की आवश्यकता है।

गीता में बतलाया गया है कि प्रत्येक मनुष्य का यह धर्म है कि जो भी कर्तव्य है, उन्हें वह सच्ची लगन व बिना फल की इच्छा से पूरा करे। छोटे से छोटे कर्म को भी यदि उचित रीति से किया जाये तो वह उस व्यक्ति तथा पूरे समाज के लिये कल्याणकारी होता है। कोई भी मनुष्य अगर निष्काम भाव से किसी कर्म को करता है तो वह उस कर्म के गुण, दोषों से मुक्त रहता है। अर्थात् वह कर्म बधनकारी नहीं होते। गीतानुसार मनुष्य को अपने स्वभाव से नियत कर्मो को ही करना चाहिये तथा उसे विपरीत स्वभाव वाले कर्म नहीं करने चाहिये एक श्लोक के अनुसार अच्छी प्रकार आचरण किये हुए दूसरे के धर्म से गुण रहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ है क्योंकि स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्म रूप कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को नहीं होता, तथा स्वधर्म के पालन में तो मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का कर्म भय देने वाला है।

गीता हमें अपनी इन्द्रियों को वश में करके संसार के सुख–दुःख को समभाव से बिना विचलित हुए भोगने की क्षमता प्रदान करती है। गीता मनुष्य को प्रेम, समता, भाईचारे का उपदेश देती है। गीता का उपदेश सभी मानवों के लिये चाहे वह युवा पुरूष हो या महिला हो, गृहस्थ हो, सभी के लिये समान रूप से उपयोगी है। सभी मनुष्य अपनी योग्यता, रूचि, श्रद्धा, विश्वास के अनुसार गीता में से अपनी इहलौकिक व पारलौकिक उन्नति का साधन पा सकते है। गीता में कहा गया है कि जो भक्त जिस भाव से भगवान को भजता है भगवान भी उसी भाव से उसे भजते हैं।

 ISSN: 2454-4248
87 – 89

मनुष्य जिस मान्यता को लेकर 'गीता' को देखता है 'गीता' भी उसी मान्यता के अनुसार उसे दिखने लग जाती है। जैसे मनुष्य दर्पण के सामने जैसा मुख बना कर जाता है उसका वैसा ही मुख दर्पण में उसे दिखने लग जाता है। जो व्यक्ति कर्म करने में विश्वास रखते है। उनके लिये यह कर्म शास्त्र है। जिससे मनुष्य के लिये कौन से कर्म उचित हैं, उनके लिये यह ज्ञान–शास्त्र है। जिससे ज्ञान का स्वरूप तथा किस प्रकार ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है तथा प्रकार के ज्ञान से मनुष्य मुक्त हो सकता है इसका ज्ञान होता है। जो मनुष्य भक्ति में विश्वास रखता है उसके लिये यह भक्तिशास्त्र है। जिससे भक्त, भक्ति का स्वरूप, भक्ति के प्रकार आदि का ज्ञान होता है।

इस प्रकार गीता में जो आत्म उन्नति के विभिन्न मार्ग दिखाई देते हैं उनमें कोई विरोध नहीं है तथा विद्वानों द्वारा गीता की जो अलग–अलग व्याख्ये हैं उनमें भी कोई विरोध नहीं है। लोकमान्य तिलक के शब्दों में 'एक मीठे और स्वादिष्ट मिष्ठान को देखकर अपनी–अपनी रूचि के अनुसार किसी ने उसे शक्कर को बना हुआ बतलाया है, तो किसी ने उसे गेंहूँ का, तो किसी ने उसे घी का बना बतलाया है तो हम उनमें से किसको झूठ समझे। अपने–अपने मतानूसार तीनों का कथन ठीक है'। यही स्थिति गीता की भी है। गीता की इसी महत्त्वता के कारण ही भारतीय विद्वानों के साथ–साथ विदेशी विद्वानों नें भी इसके महत्त्व को स्वीकारते हुये प्रेरणा के स्त्रोत के रूप में माना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लोकमान्य तिलक गीतारहस्य (हिन्दी अनुवाद) पूना, 1962
2. पाण्डे, गोविन्द्रचन्द्र मूल्य मीमांसा राज. हि. ग्रन्थ अकादमी जयपुर
3. श्रीमद्भगवदगीता साधारण भाषा टीका सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर, सम्वत् 2055
4. सक्सेना, डॉ. लक्ष्मी (सम्पा.) समकालीन भारतीय दर्शन
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1983